National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040; Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 2; Issue 2; May 2017; Page No. 268-269

याज्ञवल्क्यस्मृति में प्रतिपादित राजव्यवस्था

भूपेन्द्र प्रताप सिंह

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृत वाङ्मय वेदों, उपनिषदों, पुराणों, स्मृतिशास्त्रों तथा प्राचीन महाकाव्यों के प्रभूत विवेचित विषयों का संकलन है। समृतिशास्त्र अथवा विधि या धर्मशास्त्र मानवजीवन के व्यवहारगत आदर्शों एवं कर्त्तव्यों का स्त्रोत है। स्मृतियाँ तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक तत्वों के उत्कर्ष–अपकर्ष के विविध पक्षों का विवेकपूर्ण अध्ययन हैं। आद्यस्मृति के रूप में अनेक विद्वान् मनुस्मृति को स्वीकार करते है तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य स्मृति को स्थान प्राप्त है। ई0पू0 प्रथम शताब्दी से तृतीय ई0 सन् तक इसकी अवस्थिति मानी जाती है। याज्ञवल्क्यस्मृति सहस्र श्लोकात्मक है, जो आचार, व्यवहार एवं प्रायश्चित नामक तीन काण्डों में प्रणीत है। राज्य, राजा एवं प्रजा के परस्पर हितों का समुच्चय एवं प्राणिमात्र के दैनिक व्यवहार का सूक्ष्म विवेचन स्मृतियों द्वारा मानव विधि, कानून या संविधान के रूप में स्थापित किया जाता रहा।

याज्ञवल्क्यस्मृति के आचार काण्ड में उपदिष्ट राजधर्मप्रकरण तथा व्यवहार काण्ड का सम्बन्ध राजनीतिक व्यवस्था के विषयगत अध्ययन से ही है। याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रतिपादित राजव्यवस्था राज्य के सप्ताङ्ग सिद्धान्त पर आधारित हैं। राजनीतिक अध्ययन की दृष्टि से सप्ताङ्गों का सूक्ष्म अध्ययन उल्लेखनीय है। इसके अन्तर्गत– स्वामी, आमात्य, जन (प्रजा), दुर्ग, कोश, दण्ड तथा मित्राङ्गों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

स्वाम्यमात्या जनो दुर्गं कोशोदण्डस्तथैव च।
मित्राण्येताः प्रकृतयो राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते।।[1]

याज्ञवल्क्यीय राजव्यवस्था में राजा में उत्साह विनय, सत्यता, कुलीनता, धार्मिकता, गोपनीयता, अपने विशिष्ट राज्याङ्गों के रन्ध्रों का प्रक्षिप्त ज्ञान, आन्वीक्षिकी तथा दण्डनीति, वार्ता रूपी विद्याओं में निष्णात होना परमावश्यक बताया गया है।

स्वरन्ध्रगोप्तऽऽन्वीक्ष्यिां दण्डनीत्यां तथैव च।
विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः।।[2]

राजा द्वारा शासन–संचालन हेतु प्रज्ञावान्, कुलीन स्थिरचित्त विशिष्ट व्यक्तियों को अपने मंत्रिमण्डल में स्थान देना चाहिए। योग्य व्यक्तियों के विषय में विधिवत् परीक्षण एवं चारित्रिक सामर्थ्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना राजा के लिये अनिवार्य है। वह राजमन्त्रणा के समय अपने राजपुरोहितों, मंत्रियों तथा प्रधानामात्यों से विचार–विमर्श के पश्चात् ही अन्तिम निर्णय करें।

स मन्त्रिणः प्रकुर्वीत् प्राज्ञान्मौलन्स्थिराञ्शुचीन्।
तैः सार्धं चिन्तयेद्राज्यं विप्रेणाय ततः स्वयम्।।[3]

राजा दैवविद्यानिपुण, दण्डनीति, अथर्वाङ्गिरस में निपुण व्यक्ति को राजपुरोहित अथवा प्रधानामात्य नियुक्त करें। वह राजपुरोहित राजा तथा अन्य मन्त्रियों के मध्य परस्पर संवाद, मंत्रणा एवं परामर्श को गुप्त रखे। ऐसा नियम आधुनिक भारतीय राजनीति में नेता एवं मंत्रियों के द्वारा पद एवं गोपनीयता की शपथ की व्यवस्था से साम्य रखता है।

मन्त्रमूलं यतो राज्यं तस्मान्मन्त्रं सुरक्षितम्।[4]

राज्य संचालन के लिये राजा द्वारा सामदानादि उपायो; एवं षाड्गुण्यनीति का प्रयोग करना चाहिए। राजा द्वारा अपनी समस्त प्रजा का विवेकपूर्ण नियोजन करते हुए पशुओं के अनुकूल, वनयुक्त स्थान पर अपने राजकोष तथा स्वयं की सुरक्षा हेतु आकर्षक एवं सुदृढ़, अभेद्य दुर्गों का निर्माण करवाना चाहिए।

रम्यं पशव्यमाजीव्यं जाङ्गलं देशमावसेत्।
तत्र दुर्गाणि कुर्वीत् जनकोशात्मगुप्तये।।[5]

राजा द्वारा सम्पूर्ण राज्य की प्रजा की रक्षा एवं उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धर्मपूर्वक राजस्व एवं कर का संग्रहण, रक्षण एवं वितरण करना चाहिए। अपने राजोचित् आदर्श सद्गुणों में उसे ब्राहमणों के प्रति क्षमा, सुहृदजनों के प्रति सौम्यता, शत्रुजनों के प्रति क्रोध तथा अपने जनों अर्थात् प्रजाओं के प्रति पिता जैसे स्वरूप की भाँति व्यवहार करना चाहिए।

ब्राहणेषु क्षमी स्निग्धष्वजिह्नः क्रोध नोऽरिषु।
स्याद्राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता।।[6]

राज्य की न्यायिक व्यवस्था के कार्यान्वयन का प्रधान उत्तरदायित्व राजा अर्थात् स्वामी का होता था। वह वेदपाठी, पुराणोपनिषद् तथा विधिशास्त्रों के मर्मज्ञ, सत्यवादी व्यक्ति को अपनी सहायता के लिये नियुक्त करना चाहिए। न्यायाधिकरण के द्वारा अर्थी एवं प्रत्यर्थी द्वारा रखे गये स्वपक्षप्रमाण हेतु एक लेख पर वर्ष, मास, पक्ष, दिन, नाम और जाति का उल्लेख करना आवश्यक बताया जिससे कि उस निर्णय को भविष्य के लिये प्रमाण रूप में प्रयोग में लाया जा सके।

प्रत्यार्थिनोऽग्रतों लेख्यं यथावेदितमर्थिना।
समामासादर्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम्।।7

याज्ञवल्क्य स्मृति में एक ऐसी विधि का उल्लेख किया गया है जो अद्यावधि प्रचलित एवं प्रासङ्गिक है। यथा न्यायाधिकारी द्वारा अभियोगसिद्ध आपराधिक वाद का अन्तिम निस्तारण होने के बाद ही अपराधी व्यक्ति को दोषी मानना चाहिए अर्थात् जब तक किसी व्यक्ति का दोष साक्ष्यों से सिद्ध न हो जाए, उसे जब दोषी ठहराया न गया हो तब तक वह पूर्वस्वतंत्र निर्दोष होकर अपने पक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता है।

अभियोगमनिस्तीर्य नैनं प्रत्यभियोजयेत्।8

राजा द्वारा वर्तमान विनियमों के विरोधाभास के निवारण के लिये प्राचीन परम्पराओं का आश्रय लेकर तीन प्रमाणों यथा–लेख, उपभोग और साक्षी के द्वारा न्याय करना चाहिए। इन प्रमाणों से उपकृत न्याय एवं सन्देह निरोध के लिये तुला, अग्नि, जल, विष और कोश रूपी पञ्चकृत्यों का प्रयोग समीचीन था।

प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्तितम्।9
तुलाग्न्यापो विषं कोशो दिव्यनीह विशुद्धये।10

याज्ञवल्क्य स्मृति का व्यवहाराध्याय तत्कालीन राज्यव्यवस्था के मूल मानदण्डों एवं विधियों का उल्लेख करता है। आधुनिक समय में भारतीय न्याय में प्राचीन विधि प्रचलित है। यथा माता–पिता की मृत्यु के पश्चात उनकी चल–अचल सम्पत्ति सभी पुत्रों में समान रूप वितरित हो। अगर पिता द्वारा कोई ऋणादान हो तो उसे सभी पुत्रों के द्वारा समान रूप से अदा किया जाना चाहिए।

विभजेन्सुताः पित्रोरूर्ध्व रिक्तमृणं समम्।11

माता–पिता के द्वारा अपना सम्पूर्ण धन जीवनकाल में किसी एक पुत्र या सन्तान को देना भी विधिसम्भत है। पिता की मृत्यु होने पर उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति में माता एवं पुत्रों का समान अधिकार होता है। माता भी अपने धन को किसी या सभी पुत्रों में बाँट सकती है। पिता की मृत्यु के बाद पुत्रों के द्वारा अपनी अविवाहित बहनों के कन्यादान हेतु समान धन एवं सहयोग करना चाहिये।

पितुरूर्ध्वं विभजतां माताऽप्यंशं समं हरेत्।।12
भगिन्यश्च निजा दंशाद्दत्त्वांशं तु तुरीयकम्।।13

चातुर्वर्ण्य विधानान्तर्गत किसी व्यक्ति के मृत्यु पश्चात् उसकी सम्पति में धर्मज पुत्र के अभाव में उत्तराधिकार हेतु उसकी पत्नी, पुत्रियाँ, वृद्ध माता–पिता, सगा भाई, भाइयों की संततियाँ, गोत्रज, बन्धु, मित्र, शिष्य और ब्रहमचारी के मध्य क्रमशः अभावगत हस्तान्तरण का प्रावधान था जो किञ्चित् परिवर्तनों द्वारा अद्यावधि प्रचलन में है।

पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा।
तत्सुता गोत्रज बन्धुशिष्यस ब्रह्म चारिणः।।14
एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः।
स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधि।।15

याज्ञवल्कीयस्मृति में दण्डनीति का विशद् विवेचन किया गया है। राजा द्वारा अपराध प्रकृति के अनुसार दण्ड का उच्च एवं निम्न वर्णों के प्रति प्रयोग विवेक ज्ञान से करना चाहिए। राजा द्वारा राज्य की प्रत्येक वस्तु, व्यापार पर दण्ड एवं कर का प्रावधान किया जाता था।

दण्डप्रणयनं कार्यं वर्ण जात्युत्तराधरैः।16

चौरकर्म में लघु, मध्यम एवं उच्च मूल्य वाली वस्तुओं हेतु देशर, काल एवं परिस्थिति जन्य दण्ड का विधान करना चाहिए। कृषि फसल, घर, वन, ग्राम तथा खलिहान को विनष्ट करने तथा राजपत्नी से व्यभिचार के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया था।

क्षुद्रमध्यममहाद्रव्यहरणे सारतो दमः।
देशकाल वयःशक्ति संचित्यं दण्डकर्मणि।।17
क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीत खलदाहका।
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना।।18

राजा द्वारा अपने क्रूर शत्रुओं की प्रशंसा करने वाले, गुप्तमंत्रणा को प्रकट करने वालों को राष्ट्रद्रोह की भाँति अपराधदण्ड दिया जाना चाहिए। न्यायोचित व्यवहारान्तर्गत राजा द्वारा दण्डनीति का अनुसरण वाग्दण्ड, धिग्दण्ड, धनदण्ड तथा प्राणदण्ड का एक साथ या पृथक–पृथक रूप विधान करना चाहिए।

राज्ञोऽनिष्ट प्रवक्तारं तस्यैवाक्रोशकारिणाम्।
तन्मन्त्रस्य च भेत्तारं छित्त्वा जिह्वां प्रवासयेत्।।19
धिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो धनदण्डो वधस्था।20

इस प्रकार महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने स्मृतिग्रन्थ में तत्कालीन मानव–समाज से सम्बन्धित प्रत्येक पक्ष पर एवं राजनैतिक व्यवस्था पर अपने सशक्त विचारों को विधियों एवं नियमों के रूप में प्रस्तुत किया। चूँकि याज्ञवल्क्य मनु के पश्चाद्वर्ती थे इसलिए उन्होने मनुस्मृति के अनेक विषयों एवं दृष्टान्तों को अपने स्मृति ग्रन्थ में उद्धृत किया। उन्होंने सामाजिक, नैतिक तथा राज्यव्यवस्था की दृष्टि से अनेक यथार्थ विधियों का प्रतिपादन किया जो तत्कालीन राजनीतिक अवस्थिति से वर्तमान समय में अध्ययन का विषय बनी हुई हैं।

राज्यव्यवस्था के अन्तर्गत ही वर्णाश्रम व्यवस्था, राजधर्म व्यवस्था, व्यवहाराध्याय तथा प्रायश्चित कर्मों का विस्तृत विवेचन याज्ञवल्क्य समृति का प्रतिपाद्य है। याज्ञवल्क्य स्मृति में सप्तराज्याङ्गों के विवेकपूर्ण विनियोग को समीचीन बतलाते हुए राज्य, राजा तथा प्रजा के मध्य परस्पर सामञ्जस्य, सहयोग युक्त विश्वसनीय सामाजिक प्रास्थिति के निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता है।

संदर्भ

1. याज्ञवल्क्यस्मृति –1/353
2. याज्ञवल्क्यस्मृति –1/311
3. याज्ञवल्क्यस्मृति –1/312
4. याज्ञवल्क्यस्मृति –1/344
5. याज्ञवल्क्यस्मृति –1/321
6. याज्ञवल्क्यस्मृति –1/334
7. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/6
8. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/9
9. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/22
10. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/95
11. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/1161ध्2
12. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/123
13. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/124
14. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/135
15. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/136
16. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/206
17. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/75
18. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/282
19. याज्ञवल्क्यस्मृति –2/302
20. याज्ञवल्क्यस्मृति –1/367